श्री सत्नाम साक्षी श्री गुरुपरमात्मने नमः

ॐ

कठोपनिषद्
यमराज और नचिकेता की कथा

हिन्दी में

रचयिता

श्री प्रेम प्रकाश मण्डलाचार्य योगीराज ब्रह्मनिष्ठ

श्री श्री 1008 सद्गुरु स्वामी टेऊँरामजी महाराज

प्रकाशक

स्वामी भगतप्रकाश जी महाराज

प्रेम प्रकाश मण्डल (ट्रस्ट)

अमरापुर स्थान, जयपुर-302001

सर्वाधिकार सुरक्षित

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशकः
स्वामी भगत प्रकाश जी महाराज
प्रेम प्रकाश मण्डल (ट्रस्ट)
श्री अमरापुर स्थान, जयपुर-302001

तृतीय संस्करण 1,000

सम्वत् 2067,
फरवरी, 2011

मूल्य : 20/-

मुद्रक :
गणपति, जयपुर
फोनः 9828112907

- भूमिका -

प्रिय पाठकगण ! यह यमराज और नचिकेता की कथा, कृष्ण यजुर्वेद की कठशाखा के कठोपनिषद् में है। जब पूज्यपाद आचार्य सद्गुरु स्वामी टेऊँराम जी महाराज ने इस कथा को सुना, तब स्वामी जी ने अपने मन में विचार किया कि हमारे सिन्धु देश में संस्कृत वेदान्त विद्या का इतना प्रचार नहीं है, जितना कि कर्म, धर्म व भक्ति भाव का प्रचार है। वह प्रचार भी लोग राग विद्या के द्वारा ही सुनते हैं, केवल कथा को बहुत कम सुनते हैं और यह कथा अति सुन्दर, सरल, मधुर है, और रसिक प्रेमियों को ज्ञान-विज्ञान के देने वाली है। इसलिये इस कथा को कविता में बनाकर देश-देशान्तर में प्रचार करना चाहिये। ऐसा विचार कर गुरु महाराज जी ने कठोपनिषद् के सार भूत को राधेश्याम लावनी में कविताबद्ध किया।

इस कथा को सद्गुरु स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने पुस्तक के रूप में लोक कल्याणार्थ प्रकाशित करके अपनी मधुर वाणी में प्रेमपूर्वक गाकर इसका देश-विदेश में खूब प्रचार किया। जिसे सुनकर कई जिज्ञासु ज्ञान ध्यान को पाकर परम शान्ति को प्राप्त हुए।

अब भी जो मनुष्य श्रद्धा, प्रेम व त्याग वैराग्य पूर्वक इसको सुनेंगे, पढ़ेंगे, एकान्त में विचारेंगे और चित एकाग्र करके अपने ब्रह्मात्मा स्वरूप का अनुभव करेंगे, वे निश्चय सर्व-दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द स्वरूप मोक्ष की प्राप्ति करेंगे। और जो मनुष्य पितृ पक्ष में पितृ श्राद्ध करने के समय में ब्राह्मणों व साधु सन्तों को प्रेम से इस कथा को सुनाता है, उस पुरुष के पितृ श्राद्ध के अनन्त फल को पाकर सुखी होते हैं। अतः हर एक मनुष्य का परम कर्त्तव्य है कि इस कथा को सुनकर जीवन का लाभ उठावे, और शान्ति को पावे। ॥ ॐ शान्ति! ॥

सेवा में

प्रेम प्रकाश मण्डल

ॐ

श्री सत्नाम साक्षी **श्री परमात्मने नमः**

यमराज और नचिकेता की कथा

- मङ्गलाचरण -

दोहा:-

वार वार वन्दन करूं, पूरण ब्रह्म अखण्ड।
जांके सत् प्रकाश ते, प्रकाशत ब्रह्मण्ड॥1॥
हरि हर गौरि गणेश रवि, सब को है प्रणाम।
जिनकी कृपा दृष्टि से, होवें पूरण काम॥2॥
धरहूँ सद्गुरु देव के, चरण कमल का ध्यान।
कह टेऊँ जिस कृपाते, ऊज्ञा अनुभव भान॥3॥

छन्द:-

कठ उपनिषद् कविता माहीं, करता हूँ वख्याना जी।
यजुर्वेद की कथा पुरातन, करो अमीरस पाना जी॥
सावधान हो बैठ श्रोता, पूरण मन विश्वास धरो।
यमराज नचिकेत कथा को, सुनकर सबहीं दूख हरो॥
जिसके श्रवण मनन आदि से, जीव अमर हो जाता है।
कहता टेऊँ काल चक्कर में, फेर कभी नहिं आता है॥

दोहा:-

यजुर्वेद में है लिखी, कठ शाखा के माहिं।
तांते ही कठ उपनिषद्, नाम पड़ा है ताहिं॥4॥

छन्दः-

अर्थ दान पुनि अन्न दान का, वेदों ने यश गाया है।
अन्न दान के करने से ही, जिसने बहु यश पाया है॥
उसी अरुण सुत उद्दालक ने, मन में हर्ष बढ़ाया जी।
विश्वजीत यज्ञ नाम जिसीका, सो इक दिन करवाया जी॥
फल इच्छा से सर्वस्व अपना, देने को मन माहिं किया।
लेके अपना सर्व पदार्थ, विप्रों को तिहं दान दिया॥
उस उद्दालक महामुनी का, एक पुत्र नचिकेता था।
कुमार अवस्था का वह बालक, बुद्धि का अति सचेता था॥

दोहाः-

तिसी पुत्र नचिकेत पर, करके मोह अपार।
अपनी गौओं का मुनी, करन लगे बटवार॥5॥

छन्दः-

उद्दालक मुनि पुत्र मोह वश, गौओं का दो भाग किया।
सुन्दर दूध के देने वाली, पुत्र निमित्त वे राख लिया॥
बिना दूध के लूली लँगड़ी, बूढ़ी गौवें मंगवाया।
यज्ञ करन वाले पण्डितों को, यज्ञ मण्डप में बुलवाया॥
जितने ब्राह्मण यज्ञ में आये, सबहीं को प्रणाम किया।
वो ही गौवां उन विप्रों को, दक्षिणा में सब दान दिया॥

दोहाः-

पिता हेत नचिकेत तब, श्रद्धा मन में धार।
इस विधि देना देख के, करन लगे वीचार॥6॥

छन्दः-

दक्षिणा में तो गौआं देना, उत्तम काम ही करता है।
पर ममता वश ऐसी गौआं, देकर धर्म से गिरता है॥
पानी पीने की भी शक्ती, जिनके अन्दर नाहिं रही।
चलने फिरने की भी कुछ ना, ताकत जिनके माहिं रही॥
घास खाय नहिं सकती हैं जे, दाँत जिनों के टूट गये।
दूध मिलन की आस न जिनमें, नयन जिनों के फूट गये॥
ऐसी गायें दान करत जो, लोक उसी वह जाता है।
जिसमें रञ्चक सूख न लहता, बड़े दूख को पाता है॥

दोहाः-

निषिध कर्म जो करत है, ममत राख मन माहिं।
दुख देता पुनि और को, सो सुख पावत नाहिं॥7॥

छन्दः-

जो जन किसको दुख है देता, वो भी दुख को पाता है।
जैसा जोई बीज बोहता, वैसा वो फल खाता है॥
मेरा पिता विप्रों को ऐसा, देकर दान सताता है।
कुछ भी मन में सोचत नाहीं, खोटा कर्म कमाता है॥
ऐसी गायें दान करन से, कभी न सुख को पावेगा।
उलटा जग में अपयश होगा, मर कर नरकें जावेगा॥
यौवन वाली सुन्दर गौआं, मेरे हित हीं राखी है।
विप्रों को वह देता नाहीं, मेरा मन ही साखी है॥

दोहा:-

मेरी चिन्ता कर पिता, होवत क्यों हैरान।
रक्षा हमरी सो करे, दीना जिसने प्रान॥8॥

छन्द:-

सब जीवों को पालत जोई, किस को भूख न मारत है।
नाम विश्वम्भर प्रकट जिसका, तीन लोक को धारत है॥
मैं सपूत इस पिता कर्म को, देख शरम मुझ आता है।
जोय पिता को नरक से तारत, पुत्र वही कहलाता है॥
मात पिता की सेव करे जो, चरने सीस निवाता है।
सो जन दुःख काहूँ नहिं पावत, अन्त स्वर्ग को जाता है॥

दोहा:-

मात पिता जिन सेविया, तीर्थ तिन सब कीन।
सुखी रहे संसार में, भये न कबहूँ दीन॥9॥

छन्द:-

सेव बड़ों की करत न जोई, ताहिं कपूत पछानो रे।
पुत्र शब्द नहिं घटता उसमें, निश्चय कर यह जानो रे॥
तांते ऐसे दान करन से, अभी पिता को वारूं मैं।
यही वेद का धर्म सनातन, तांको सिर पर धारूं मैं॥
ऐसे विचार कर नचिकेता, हाथ जोड़ कर कहन लगे।
सुनो पिताजी ध्यान लगाकर, मेरे हैं अब भाग जगे॥

दोहा:-

जैसे गोधन आपका, प्रकट है संसार।
तैसे मैं भी आपका, पुत्र धन हूँ सार॥10॥

छन्द:-

मुझ को अब हीं दक्षिणा में तुम, कहो किसी को देते हो।
अपने यज्ञ को सफल करे तुम, क्यों नहिं फल को लेते हो॥
ऐसी बाणी सुनकर सुत की, उद्दालक कुछ बोला ना।
छोटा बालक मूढ जानके, अपने मुख को खोला ना॥
नचिकेता फिर बार दूसरी, उसी बात को दुहराया।
किस को देते हो तुम मुझको, कहो पिताजी ऋषिराया॥

दोहा:-

उद्दालक ने फेर भी, दिया न तिस पर ध्यान।
करन लगे निज काम को, बालक जान अजान॥11॥

छन्द:-

उद्दालक जब अपने मुख से, कुछ ना बोला मौन रहा।
तब नचिकेता बार तीसरी, हाथ पिता का आन गहा॥
कहो किसी को देते हो मुझ, बड़े जोर से वचन कहा।
बालक का हठ देख देख के, उद्दालक मन माहिं दहा॥
रे रे मूरख जानत नाहीं, तुझको समझा लेता हूँ।
बार बार जो कहते हो तो, यमराज को देता हूँ॥

दोहा:-

नचिकेता यह वचन सुनि, करन लगे वीचार।
सदा पिता के वचन पर, मैं हूँ चलने हार॥12॥

छन्द:-

अब तक पित की आज्ञा को मैं, उल्लङ्घन कभी न कीना है।
सदा पिता की आज्ञा में मैं, अपना मन ही दीना है॥

फेरि मुझे क्यों यम पुर भेजत, यम को क्या मैं देवेंगे।
धर्मराज का कौन काम जो, मुझसे करवा लेवेंगे॥
अब मैं मन में समझ गया हूँ, पिता क्रोध वश आया है।
सोच बिना ही इसने मुझको, ऐसा वचन सुनाया है॥

दोहाः-

यामें मेरा पुण्य है, पाप न होगा कोय।
पिता वचन सत् करन में, हमरा ही हित होय॥13॥

छन्दः-

ऐसा कोई नाहिं सुना जो, जग में अमर कहाया है।
जन्म जगत में जिसने पाया, निश्चय सो मरि जाया है॥
बड़ी-बड़ी आयू वाले जो, सब को काल संहारा है।
अंडज जेरज स्वेदज उद्भुज, सब जग चलने हारा है॥
तांते तात वचन सिर धरके, यमपुर को मैं जाऊंगा।
मानुष जन्म अमोलक हीरा, तांको सफल बनाऊंगा॥

दोहाः-

मन में ही नचिकेत फिर, ऐसा किया विचार।
मेरे बिनु मम तात को, होगा कष्ट अपार ॥14॥

छन्दः-

मेरे जाने पीछे मन में, पिता दुःखी अति होवेगा।
पुनि पुनि मेरी सुरति करे वह, रैन दिवस ही रोवेगा॥
तात वचन को तज कर जो मैं, यम के पास न जाऊंगा।
पिता वचन भी मिथ्या होगा, जग में नीच कहाऊंगा॥

यह निश्चय मन कर नचिकेता, पास पिता के आया जी।
शोक हरन हित हाथ जोड़के, ऐसा वचन सुनाया जी॥

दोहाः-

पिता सोच के शोक तज, अपना आप सम्भार।
अपने पिता पितामह की, देखो नीति विचार॥15॥

छन्दः-

उन्होंने कब झूठ न बोला, सत्य वचन-व्रत धारी थे।
अपना स्वारथ कभी न चाहत, जग में पर उपकारी थे॥
अब भी सन्त जनों को देखो, मिथ्या वचन न कहते हैं।
प्राण जाय तो जाय भले पर, सत्य में स्थित रहते हैं॥
तुमने भी तो अब तक मिथ्या, कभी न वचन उच्चारा है।
अपने सिर पर दूःख सहारे, धर्म सनातन धारा है॥

दोहाः-

वचन सत्य के करन हित, हरिये मोह सुजान।
यमपुर जाने की मुझे, आज्ञा दे भगवान॥16॥

छन्दः-

शरीर ये क्षण भंगुर है सब, स्थिर रहन न पाते हैं।
क्षण क्षण में ये उत्पन्न होकर, जल्दी लय हो जाते हैं॥
जैसे नभ में धनुष इन्द्र का, रंगा रंगी भासत है।
तैसे ही इस जग के माहीं, शरीर ये प्रकाशत है॥
थोड़े मात्र रह कर के ये, शीघ्र ही छिप जाएंगे।
जिससे पैदा होते हैं ये, तिसही माहिं समाएंगे॥

दोहाः-

कल्पित हैं ये देह सब, जैसे मरूथल नीर।
तांते मेरा मोह तज, धरिये मन में धीर॥17॥

छन्दः-

सत्य धर्म पर स्थित होके, अपने मन को शान्ति करो।
मेरी चिन्ता कभी न करिये, निशदिन हरि का ध्यान धरो॥
जो करना था सो सब कीना, और न तुम को करना है।
केवल यम पुर भेजे मुझ को, धर्म इसी को धरना है॥
ये सुन उद्दालक ने जाना, नचिकेता अब जावेगा।
सोच सोच के आज्ञा दे दी, रहन न कब यह पावेगा॥

दोहाः-

ऊठ तभी नचिकेत ने, पितु को करा प्रणाम।
एक पलक में पहुँच गया, धर्म राज के धाम॥18॥

छन्दः-

पितृ-भक्ति निज तप के बल से, देह सहित सो चला गया।
धर्म राज के दरवाजे पर, नचिकेता जा खड़ा भया॥
धर्म राज के द्वारपाल तब, देख इसी विधि कहत भये।
धर्म राज अब घर में नाहीं, किसी काम से चले गये॥
पता नहीं कब आवेगा वह, तब तक चल आराम करो।
जब आवे तब मिल कर उससे, पूरण अपना काम करो॥

दोहाः-

चल कर अब हीं महल में, भोजन कर भूदेव।
अपने हित के कारने, करूं तुम्हारी सेव॥19॥

छन्दः-

इतना सुन नचिकेत कहा तब, बैठ यहाँ मर जाऊंगा।
धर्म राज के मिलने बिन मैं, भोजन कभी न पाऊंगा॥
वृथा आग्रह करके क्यों तुम, इतना कष्ट उठाते हो।
भोजन का अब समय भया है, चल कर क्यों ना खाते हो॥
इतना कहने पर नचिकेता, बैठ वहाँ दिन तीन रहा।
अन्न खाने जल पीने के बिन, दरवाजे पर दीन रहा॥

दोहाः-

चौथे दिन यम राज जब, आये निज घर माहिं।
समाचार नचिकेत का, तीय सुनाया ताहिं॥20॥

छन्दः-

सुनो पती जो साधू ब्राह्मण, अतिथी जिस घर आता है।
उसका जो सत्कार न करता, तिसका पुण्य सब जाता है॥
तेरे द्वारे भी यह अतिथी, तीन दिवस से आया है।
ना कछु इसने पानी पीया, ना कछु भोजन खाया है॥
अब हीं जा इस अतिथी का तुम, पूजन नाना भान्ति करो।
जल्दी जाओ ढील न करिये, तांके मन को शान्ति करो॥

दोहाः-

जिस गृहस्थी के गेह से, अतिथी जात निरास।
तांका अपयश होत जग, पुण्य सर्व हो नास॥21॥

छन्दः-

यद्यपि गृही ज्ञानी होवे, वेद अर्थ का ज्ञाता जी।
परन्तु जो नहिं अतिथी सेवे, निर्बुद्ध सो कहलाता जी॥

जप तप पूजा दान यज्ञ कर, पुनि जो तीर्थ नाते हैं।
अतिथी सेवन के बिन सगले, वृथा तांके जाते हैं।।
इस कारण अतिथी को राजन, कभी निरास न करना जी।
अन्न पानी से तृप्त करके, दूःख इसी का हरना जी।।

दोहाः-

अब ही उठ नचिकेत का, करलो तुम सत्कार।
ब्राह्मण अतिथी आइया, राजन तेरे द्वार।।22।।

छन्दः-

यह सुनकर तब धर्मराज ने, नचिकेता को आन कहा।
मेरे दर पर आय ब्राह्मण, तुमने भारी दूःख सहा।।
अग्नि रूप ही अतिथी हो तुम, देख तुझे मैं डरता हूँ।
क्षमा करो अपराध हमारा, तुमको वन्दन करता हूँ।।
तीन दिवस ना पानी पीया, ना तुम भोजन खाया है।
ऐसा सुनकर निज पत्नी से, पास तुम्हारे आया है।।

दोहाः-

तीन दिवस तुम द्वार पर, खड़े रहे नचिकेत।
तीन दिवस के तीन वर, अब तुझको मैं देत।।23।।

छन्दः-

मन वाञ्छित वर मांग लेह तुम, सत्य बात बतलाता हूँ।
तुझे तीन वर देने में मैं, अतिशय कर हर्षाता हूँ।।
ऐसा सुनि नचिकेत कहा तब, सत्य वचन निज कीजे जी।
कृपा कर मुझ देते हो तो पहले यह वर दीजे जी।।
पिता उद्दालक मेरे कारण, सोच सोच के रोता है।
नहिं खाता नहिं पीता है वह, सुख से भी नहिं सोता है।।

दोहाः-

यह चिन्ता उनकी हरो, पहले जैसा होय।
क्रोध रहित प्रसन्न रहे, दूःख न व्यापे कोय।।24।।

छन्दः-

जब मैं अपने घर को जाऊं, देख पिता विश्वास धरे।
पहले जैसा प्यार करत था, तैसे मुझसे प्यार करे।।
पुत्र मेरा नचिकेता है यह, यम लोक से आया है।
पूर्व का पुण्य मेरा है को, जिसने आन मिलाया है।।
ऐसा जान पिता निज मन में, अतिशय आनन्द पावे जी।
सन्मुख होकर बात करे पुनि, हृदय से मुझ लावे जी।।

दोहाः-

इतना सुन यमराज ने, कहा अती हर्षाय।
नचिकेता यह आस तव, अब पूरण हो जाय।।25।।

छन्द :-

यह वाणी सुन यमराज की, नचिकेता का शोक गया।
हाथ जोड़ कर नम्र भाव से, दूसर वर यह कहत भया।।
धर्म राज जिस स्वर्ग लोक में, जीव सर्व सुख पाते हैं।
रोग शोक दुख भय नहिं कोई, तुम भी नाहिं सताते हैं।।
भूख प्यास कछु जहं ना लागे, वृद्धापन नहिं आता है।
शब्द आदि रस सुख हैं जेते, मन इच्छित जहं पाता है।।

दोहाः-

साधन उस सुर लोक के, जानत हो तुम देव।
कृपा कर तिस अग्नि का, मोहि बताओ भेव।।26।।

छन्दः-

धर्मराज मुझ श्रद्धालू को, अग्नि तत्त्व का सार कहो।
अग्नि यज्ञ की सामग्री का, सारा तुम विस्तार कहो॥
सार इसी का तुम से सुन कर, मृत्यु लोक जब जाऊंगा।
सब जीवन को यज्ञ करा कर, स्वर्ग लोक पहुँचाऊंगा॥
तेरी कृपा से यमराजा, तव महिमा मैं जानत हूँ।
हाथ जोड़ मैं तुम से स्वामिन् !, दूसर वर यह माँगत हूँ॥

दोहाः-

नचिकेता की बात सुन, कहन लगे यमराज।
अग्नि तत्व का भेव सब, तुझे बताऊँ आज॥27॥

छन्दः-

स्वर्ग के साधन अग्नि तत्त्व को, भली भान्ति मैं गाता हूँ।
सावधान हो सुन नचिकेता, तुझको साफ सुनाता हूँ॥
देव लोक को देने वाली, यज्ञ रूप यह भासत है।
विद्वानों के हृदय अन्तर, सूर्य सम प्रकाशत है॥
अद्भुत ही तिस अग्नि विद्या का, वर्नन तब यमराज किया।
जे जे साधन यज्ञ करन के, नचिकेता को सुना दिया॥

दोहाः-

फेर कहा यमराज ने, क्या समझा मन माहिं।
ज्यों सुनिया नचिकेत ने, त्यों सुनाया ताहिं॥28॥

छन्दः-

यह सुन धर्मराज कह तुम पर, मैं प्रसन्न नचिकेता हूँ।
तीन वरों से भिन्न चौथा वर, अब हीं तुम को देता हूँ॥

अब से लेकर नाम तुम्हारे, लोग अग्नि यह गायेंगे।
''नचिकेताग्नि'' नाम इसी का, प्रकट जग हो जायेंगे॥
तत्व अग्नि का कहा यथार्थ, संशय इसमें नाहिं करो।
ज्ञान रत्न की माल देत हूँ, स्वीकार तुम ताहिं करो॥

दोहाः-

फेर कहा यमराज ने, और सुनो नचिकेत।
इस नाचिकेत अग्नि का, जो आरम्भ कर लेत॥29॥

छन्दः-

इस अग्नी के अनुष्ठान को, तीन बार जो ठानत है।
जितनी ईंटे चयन अगनि का, सर्व विधी को जानत है॥
ऐसा जो विद्वान विधी से, पूर्ण यज्ञ को करता है।
सो मन वंछित फल को पाकर, देव लोक पग धरता है॥
दान यज्ञ पुनि वेदाध्ययन को, निरइच्छा जो करता है।
सो जन इस जगतर के माहीं, नहिं जन्मत नहिं मरता है॥

दोहाः-

नचिकेता इस अग्नि को, गायेंगे सब देव।
दनुज मनुज सुख पायेंगे, करके इसकी सेव॥30॥

छन्दः-

मानुष गन्धर्व देव सर्व ही, पूजा कर फल पावेंगे।
'नाचिकेत' कर नाम अग्नि का, तीन लोक ही गावेंगे॥
तुमने दूसर वर जो मांगा, सो मैं तुझको दीना है।
स्वर्ग अग्नि के सारे साधन, तुझ पै वर्णन कीना है॥

अब तुम तीसर वर को मांगो, दे तुझ पूरण काम करूं।
काम तुम्हारा पूरण करके, पीछे मैं विश्राम करूं।।

दोहाः-

नचिकेता ने तब कहा, सुनिये यम भगवान।
मांगू यह वर तीसरा, देवो आतम ज्ञान।।31।।

छन्दः-

कोई कहत यह आतम देवा, देह आदि से न्यारा है।
कोई कहत ये शरीर से मिल, करत सर्व व्यवहारा है।।
कोई कहत ये मन है आतम, कोई कहत विज्ञाना है।
कोई कहत ये इन्द्रिय आतम, कोई कहत ये प्राना है।।
कोई कहत ये शरीर आतम, कोई कहत आभासा है।
कोई कहत ये बोलत आतम, कोई कहत आकासा है।।

दोहाः-

कोई कहता एक है, कोई कहत अनन्त।
ऐसे सुन बहु वचन को, भ्रम भया भगवन्त।।32।।

छन्दः-

और यही संशय मन रहता, क्या मुझ कर्म कमाना है।
कौन देस से आया हूँ मैं, किसी देश फिर जाना है।।
मैं हूं कौन जगत पुनि क्या है, काल कौन किस मारत है।
किस मार्ग से आता जाता, कौन जन्म को धारत है।।
मेरे मन में हैं ये संसे, तांते शान्ति न आवत है।
कर कृपा दे आतम ज्ञाना, ये वर मुझ को भावत है।।

दोहाः-

ऐसे सुन यमराज ने, सोच किया मन माहिं।
परीक्षा लूं नचिकेत की, पात्र है की नाहिं।।33।।

छन्दः-

मुक्ती साधन आतम ज्ञाना, अधिकारी को देना है।
पात्र है की पात्र नाहीं, इसको ही परखेना है।।
ऐसे सोच कहा यम ने तब, बात सुनो नचिकेता रे।
तुम तो हो अति चतुर सुजाना, अब क्यों भया अचेता रे।।
अद्भुत आतम की महिमा को, ग्रन्थ वेद सब गाते हैं।
नेति नेति कहि वर्णन करते, पार न कोई पाते हैं।।

दोहाः-

अति सूक्ष्म यह तत्त्व है, विरला जानत एह।
जिसको सुनकर देव भी, करत भये सन्देह।।34।।

छन्दः-

आत्म ज्ञान की बात गहन है, देव ताहिं ना जानत है।
और जीव तो इसको सुनकर, समझत है नहिं मानत है।।
तांते यह वर मत तुम मांगो, और कोय वर मंग लीजे।
ज्यों ऋणी को धनी रोकता, त्यों ना मुझको तंग कीजे।।
और पदार्थ जितने चहिये, उतने तुम को देता हूँ।
मगर ज्ञान का वर यह तीसर, वापिस तुम से लेता हूँ।।

दोहाः-

धर्मराज जब यूं कहा, तीसर वर यह छोड़।
नचिकेता यम को तबी, कहन लगे कर जोड़।।35।।

छन्दः-

आप कहत हो इसी विषय में, देवन को सन्देह हुआ।
यह सुनि आतम में अब मेरा, और अधिक सनेह हुआ।।
ये भी तुमने कह समझाया, कठिन इसी का पाना है।
वैरागी तो इस देखन हित, जग में फिरत दिवाना है।।
तुमको तज कर ऐसा वर मैं, और किसी से पाऊँगा।
सारी दुनिया खोज खोज के, वृथा जन्म बिताऊँगा।।

दोहाः-

इस प्रश्न का आप बिन, देत उत्तर को नाहिं।
मैंने यह निश्चय किया, अपने मन के माहिं।।36।।

छन्दः-

आप समान न पूरण ज्ञानी, जग में को प्रवीना है।
तेरे जैसा नाहिं मिलेगा, भली भान्ति मैं चीना है।।
इस वर से ही मोक्ष मिलत है, जन्म मरण मिट जाता है।
ब्रह्म ज्ञान ही इसी जीव को, पूरण पद पहुँचाता है।।
तां ते मैं हूं शरण तुम्हारी, कृपा मुझ पर कीजे जी।
मैं चाहत इक आतम ज्ञाना, सो अब मुझको दीजे जी ।।

दोहाः-

दीन होय नचिकेत जब, माँगा आतम ज्ञान।
तब यम परिक्षा लेन हित, देन लगे धन मान।।37।।

छन्दः-

लाख वर्ष की आयू वाले, पुत्र पौत्र मंग लीजे जी।
निज इच्छा से कोटि वर्ष लौं, तुम भी जग में जीजे जी।।

हीरा मोती लाल जवाहर, स्वर्ण ले भण्डार भरो।
चक्रवर्ती महाराजा बन कर, भू मण्डल का राज करो।।
जो कुछ और चहत हो मनमें, सो भी तुझको देवेंगे।
स्वर्ग लोक की रम्भा आदिक, सब तुम हीं को सेवेंगे।।

दोहाः-

अब हीं जा नचिकेत तुम, करले स्वर्ग निवास।
भोग भोगि सुरलोक के, पूरण करिये आस।।38।।

छन्दः-

मृत्यु लोक वा स्वर्ग लोक में, जितने प्राणी रहते हैं।
पाञ्च विषय शब्दादिक सुख को, सर्व जीव नित चहते हैं।।
तिनको भी जे दुर्लभ मिलते, वे सब तुझको देता हूँ ।
सर्व सूख दे अब मैं तेरा, सर्व दूःख हर लेता हूँ ।।
परन्तु मरने पीछे प्राणी, कौन गती को पावेगा।
इस प्रश्न का उत्तर सुनकर, तेरा मन घबरावेगा ।।

दोहाः-

नचिकेता ने तब कहा, सुनिये यम महाराज।
स्थिर रहत न भोग यह, काल जाय या आज।।39।।

छन्दः-

ना जाने ये कब चल जावें, इन का कौन ठिकाना है।
भोग अती दुःखदाई हैं सब, निश्चय कर मैं जाना है।।
स्वर्ग लोक के भोग पदार्थ, सब को लागत प्यारा है।
पहले तिनमें सुख ही भासत, पीछा उनका खारा है।।

जो जन इनकी आशा करता, सो बहु कष्ट उठाता है।
इसमें को सन्देह नहीं है, वेद यही बतलाता है॥

दोहाः-

भोग भोगि के जगत में, केते हो गये नास।
किस की पूरण ना भई, अब तक भोगन आस॥40॥

छन्दः-

भोग-भोगके इन्द्र थाके, तो भी तृप्ति नाहिं भई।
बाल जवानी वृद्ध अवस्था, तीनों विषयन माहिं गई॥
भोग आस कर इस जग माहीं, जीव बहुत दुःख पाते हैं।
विषय आस से बार बार ही, जोनि चौरासी जाते हैं॥
आतम सुख से भोग हटाके, मन को अती लुभाते हैं।
धोखा दे कर जग में सब को, जल्दी वे चल जाते हैं॥

दोहाः-

सब अनर्थ का मूल है, भोग चाह जग माहिं।
सन्त ग्रन्थ यूं कहत है, मूरख समझत नाहिं॥41॥

छन्दः-

दीर्घ आयू लेकर तुझ से, क्या मैं अमर कहायेंगे।
दीर्घ आयू वाले ब्रह्मा, सो भी इक दिन जायेंगे॥
जैसे स्वप्ने माहीं ये नर, भान्ति भान्ति रंग पेखत है।
स्वप्ने से जब जाग उठे तब, एक दृश्य ना देखत है॥
जैसे स्वपना मिथ्या भासत, तैसे यह संसारा है।
मात पिता सुत सज्जन सनेही, झूठा सब परिवारा है॥

दोहाः-

देखत देखत चल गये, बड़े बड़े रण धीर।
काल न किस को छोड़ता, है सो अति बलवीर॥42॥

छन्दः-

काल जीव को जब आ पकड़े, तब कोई न छुड़ाता है।
कोई इसके साथ न चलता, हंस अकेला जाता है॥
तन की फिर क्या हालत होती, जिसको जीव सम्भालत है।
निशदिन साबुन अतुर लगाकर, बहुविधि पोषत पालत है॥
उसी देह को घड़ी न राखत, देखत ही सब डरते हैं।
जल्दी लेकर मरघट माहीं, जला खाक तिहं करते हैं॥

दोहाः-

विषय भोग तन कुटुम्ब की, मुझको इच्छा नाहिं।
धन भी दुःख का रूप है, सूख न कछु इस माहिं॥43॥

छन्दः-

अरबपती भी धन के कारण, दूर दूर चल जाते हैं।
सारी आयू सञ्च सञ्च धन, शान्ति न कबहूं पाते हैं॥
बड़े बड़े भूपन को देखा, धन के कारण लड़ते हैं।
मार छीन के देश लेहिं बहु, तो भी तोष न करते हैं॥
धन सम्पत्ति रथ हाथी घोड़े, चाहत नाच न गाना मैं।
ये सब अपने पास रखो तुम, मांगत आतम ज्ञाना मैं॥

दोहाः-

यद्यपि जा सुरलोक में, राज इन्द्र का पाय।
तो भी आतम ज्ञान बिन, भूख न किस की जाय॥44॥

छन्दः-

जिनके चित्त में चाह विषय की, सदा दुःखी वे रहते हैं।
सन्त ग्रन्थ मिल तिन मनुष्यों को, परम कंगाला कहते हैं॥
जीव अज्ञानी जग के माहीं, आस विषय की करते हैं।
थोड़ी आयू भोग भोगि के, अन्त दुःखी हो मरते हैं॥
सन्त गुरू के पास जाय कर, चहिये निज कल्याना जी।
लेकर उनसे अभय पदार्थ, सगले दूःख मिटाना जी॥

दोहाः-

मनुष्य विवेकी जानता, सर्व पदार्थ नास।
निश दिन मन में करत है, एक मुक्ति की आस॥45॥

छन्दः-

इसीलिये मैं मुक्ती के हित, चाहत आतम ज्ञाना जी।
जीव कहां से आया है यह, सारा भेद बताना जी॥
प्राणी मरकर किसी लोक में, किस मार्ग से जाता है।
यह भी आप बताओ मुझको, कौन गती को पाता है॥
तीसर वह यह स्वामिन मुझको, दीजे अब जो देना है।
आतम ज्ञान की है उत्कण्ठा, और न मुझको लेना है॥

दोहाः-

ऐसे जब नचिकेत ने, पूछा आतम सार।
कह टेऊँ यमराज तब, करन लगे वीचार॥46॥

छन्दः-

विषयभोग की चाह न जिसको, चाहत ज्ञान प्रकाशा है।
वेद अर्थ के ज्ञाता मुनिवर, कहत तिसे जिज्ञासा है॥

इसकी भी बहु परीक्षा लीनी, पूरण यह विश्वासी है।
मुक्ति पदार्थ कारण मुझ से, मांगत ज्ञान की रासी है॥
मुक्ति हेत जो विषय त्यागे, सोई परम वैरागी है।
आतम में अनुराग करे जो, जग में सो बड़ भागी है॥

दोहाः-

मनुष्य विवेकी के हृदय, उपजत यह वीचार।
तीन काल सत् आत्मा, झूठा है संसार॥47॥

छन्दः-

जैसे हंसा खीर नीर को, मिला हुआ जिहं पाता है।
अपनी चोञ्च से पानी त्यागे, दूध तहां पी जाता है॥
तैसे सत्य असत् मिल दोनों, जगत रूप हो भासा है।
मनुष्य मुमुक्षू मिथ्या त्यागे, सत् में करत निवासा है॥
पुत्र पशू धन आदि की इच्छा, मूढ़ अज्ञानी करते हैं।
उसी वासना से ही फिर फिर, बहुत जन्म को धरते हैं॥

दोहाः-

नचिकेता तुम धन्य हो, कीना जो सब त्याग।
तुझको बहुत लुभाइया, पर न किया अनुराग॥48॥

छन्दः-

मैंने तुझको लोभ दिखाया, स्वर्ग आदि का भोग दिया।
जान झूठ दुःख मय परिणामी, तुमने तिस का त्याग किया॥
जिसके प्राप्ति कारण मूरख, बहुते दूःख उठाते हैं।
सारी आयू आसा कर कर, अपना जन्म गंवाते हैं॥
ऐसी भोगों की जो आशा, तुम नचिकेत निवारी है।
इस कारण तुम परम विवेकी, आतम का अधिकारी है॥

दोहाः-

पुरुष विवेकी करत है, एक मुक्ति की आस।
मूंढ मनुष मन में सदा, चाहत विषय विलास॥49॥

छन्दः-

अविद्या तम से मूंढ अज्ञानी, जगत कूप में गिरते हैं।
मोक्ष पदार्थ सूझत नाहीं, चौरासी में फिरते हैं॥
जैसे मृग मरुस्थल माहीं, देख नीर हर्षाते हैं।
दौड़-दौड़ तहं व्याकुल होते, एक बून्द नहिं पाते हैं॥
तैसे मूरख भोगों माहीं, सूख देख ललचाते हैं।
रञ्चक उनको सूख न मिलता, दुःखी होय मर जाते हैं॥

दोहाः-

जैसे अन्धा भूलि के, उलटे मारग जात।
तैसे मूरख ज्ञान बिन, निशदिन पाप कमात॥50॥

छन्दः-

मूरख मानुष यों नित कहते, जग में पीना खाना है।
आगे को परलोक नहीं है, जिसमें मरकर जाना है॥
पाप पुण्य कर्मन का फल जो, यहाँ सर्व को लेना है ।
आगे धर्मराज ना कोई, जिसको लेखा देना है॥
ऐसे ही वह मूंढ अज्ञानी, अपने मन में ठानत है।
सन्त ग्रन्थों का उपदेशा, झूठा करके मानत है॥

दोहाः-

धन कुटुम्ब पुनि देह को, देख करत अभिमान।
मन माना करते सदा, समझत नाहिं अजान॥51॥

छन्दः-

ऐसे मानुष वार वार ही, मेरे वश में होते हैं।
जन्म मरण के भारी दुःख को, भोगि भोगि बहु रोते हैं॥
आतम बेमुख विषय विलासी, देखन में बहु आते हैं।
खाने पीने सोने माहीं, अपना जन्म गंवाते हैं॥
तेरे जैसा को नचिकेता, विरला रहत उदासी है।
साधन सम्पन्न आतम कांक्षी, मोक्ष का जो प्यासी है॥

दोहाः-

पुत्र नारि धन धाम का, बहुते प्यासी होय ।
कह टेऊं निज ज्ञान का, कांक्षी विरला कोय॥52॥

छन्दः-

आतम ज्ञान का सुन वख्याना, मन्द बुद्धी घबराता है।
बड़े-बड़े पण्डितों को भी यह, नहीं समझ में आता है॥
सद्गुरु बिन संशय नहिं जावे, भावे वेद अध्येन करे।
गंगा आदिक तीर्थ नावे, देवों का भी ध्यान धरे॥
ब्रह्म नेष्ठी श्रोत्री गुरु ही, देता आतम ज्ञाना है।
ऐसा सद्गुरु दुर्लभ मिलता, कहते वेद पुराना है॥

दोहाः-

लक्षण गुरु के कहत हूँ, सुन लीजे नचिकेत।
भेद भ्रम को छेद कर, ब्रह्म ज्ञान को देत॥53॥

छन्दः-

सद्गुरु साचा सोई जानो, करत न तन अभिमाना जो।
जीव ईश का भेद न माने, देखत ब्रह्म समाना जो॥
पक्षपात ते रहत निराला, सब का जो हितकारी हो।
निर्वेरी निष्कामी निर्मल, पूरण पर उपकारी हो॥

ऐसा सद्‌गुरु हरि कृपा से, किसी किसी को मिलता है।
जन्म जन्म के पुण्य सर्व मिल, जिसके आकर फलता है ।।

दोहा:-

सद्‌गुरु पूरण होय जब, शिष्य भी पूरण होय।
तब हीं पूरण ज्ञान से, पावत पूरण सोय।।54।।

छन्द:-

पूरण ज्ञान बिना यह संशय, कबहूँ मिटता नाहीं है।
कोय कहत यह तन है आतम, कोई कहत तन माहीं है।।
बहुत मनुष्य ही इसी भान्ति से, आतम चर्चा करते हैं।
तांको सुन कर जीव अज्ञानी, संशय मन में धरते हैं।।
इस कारण से पूरे गुरु बिन, भेद भ्रम नहिं जाता है।
भली भान्ति से चित्त में निश्चय, आतम ज्ञान न पाता है।।

दोहा:-

जब तक पूरण सद्‌गुरू, देते ना उपदेश।
तब तक किस के हृदय का, मिटत न संशय लेश।।55।।

छन्द:-

इसी तत्त्व को सूक्ष्म बुद्धि से, को बुद्धिवान पछानत है।
सूक्ष्म ते अति सूक्ष्म आतम, मन्द बुद्धी नहिं जानत है।।
परम प्यारा हे नचिकेता, तुम बुद्धि का प्रवीना है।
आतम ज्ञान प्राप्ति हित जो, निश्चय मन में कीना है।।
आनन्द की यह बात बनी जो, तुमने सत्य पछाना है।
अब मैं तुझ पर प्रसन्न हूं बहु, तोहि विवेकी जाना है।।

दोहा:-

नचिकेता मन में सदा, मैं नित चाहत एह।
तेरे जैसा और हरि, मोहि मुमुक्षू देह।।56।।

छन्द:-

प्रसन्न हो के धर्मराज फिर, नचिकेता को कहन लगे।
मेरे इस वरदान द्वारा, अब हैं तेरे भाग जगे।।
जगत पदार्थ जेते हैं सब, मैं भी मिथ्या मानत हूँ।
मात पिता सुत दारा सम्पत्ति, झूठा कर सब जानत हूँ।।
परन्तु मैंने इनके द्वारा, कीनी श्रेष्ठ कमाई है।
जिस कारण यह धर्मराज की, ऊंची पदवी पाई है।।

दोहा:-

निर्भय पद मैं पाइया, जिस में को डर नाहिं।
इस कर हे नचिकेत मैं, रहता आनन्द माहिं।।57।।

छन्द:-

मुझ में इतनी शक्ती है जो, सब कुछ मैं कर सकता हूँ।
जग को उत्पन्न पालन करके, फिर मैं लय कर सकता हूँ।।
अणिमा आदिक अष्ट सिद्धिनि को, मैंने प्राप्त कीना है।
सर्व सूख के माहीं निश दिन, मेरा तन मन भीना है।।
सर्व पदार्थ सुन्दर मैंने, पुरुषार्थ कर जोड़े जी।
वे सब तुझ को देता था मैं, पर सब तुमने छोड़े जी।।

दोहा:-

सब से आतम तत्व तुम, जानत हो प्रधान।
विष सम विषय त्याग के, चहत अमी रस पान।।58।।

छन्द:-

धीरज धारे निश्चल रह तुम, चाहत पद अविनासी हो।
तेरी महिमा कही न जाती, सर्व गुणों की रासी हो।।
सावधान हो सुन नचिकेता, सूक्ष्म आतम ज्ञाना है।

मन इन्द्रियों की विषय न आतम, तांते मुश्किल पाना है।।
उत्तम बुद्धि के बल से इसको, जल्दी जाना जाता है।
बुद्धी गुफा में रहता है जो, परम विवेकी पाता है।।

दोहा:-

तोहि विवेकी जान मैं, करता हूँ उपदेश।
जिसके श्रवण मनन से, रहत न संशय लेश।।59।।

छन्द:-

आत्म तत्त्व को मान लिया जिहं, तिसने सब को मान लिया।
ब्रह्मातम को जान लिया जिस, तिसने सब को जान लिया।।
ऐसे ब्रह्म तत्त्व को लख के, सन्त सुखी नित होते हैं।
जीवन मुक्ति जगत में होकर, सम की सेजा सोते हैं।।
तिस आत्म तत्त्व के पाने का, पूरण तुम अधिकारी हो।
ब्रह्म द्वारा तव हित खुलिया, जो तुम परम विचारी हो।।

दोहा:-

यह सुन कर नचिकेत ने, कहा सुनो रवि तात।
जो मोहि पात्र जानते, तो क्यों विलम्ब लगात।।60।।

छन्द:-

पात्र ज्ञान का जानत हो तो, कृपा मुझ पर करिये जी।
ब्रह्म तत्त्व का दे उपदेशा, जन्म मरण दुःख हरिये जी।।
लाख चौरासी जोनि चक्कर में, बहुते कष्ट उठाया मैं।
दीन दुःखी अब होकर भगवन्, शरण तुम्हारी आया मैं।।
कृपा करके ब्रह्म तत्त्व का, मुझको तुम उपदेश करो।
भेद भ्रम सब संशय मेटे, आवागमन कलेश हरो।।

दोहा:-

इस विधि सुन नचिकेत का, प्रेम भरा आवाज।
कह टेऊँ तब प्रसन्न हो, कहन लगे यमराज।।61।।

छन्द:-

प्राप्त करने योग्य आतम, जांका वेद वख्यान करे।
जिसके दर्शन कारण बन में, योगी निश दिन ध्यान धरे।।
जिसके प्राप्त हेतु मुमुक्षू, सद्गुरु शरणी जाते हैं।
वो ही आत्म तत्त्व मैं तुझको, अबहीं सुगम सुनाते हैं।।
जांको पूछत तूं नचिकेता, सोई ओऽमकारा है।
वही जगत का कारण जानो, वही सर्व आधारा है।।

दोहा:-

ओऽम् का नित जाप जप, ओऽम् का धर ध्यान।
कहे टेऊँ जिस स्मरते, उपजे आतम ज्ञान।।62।।

छन्द:-

ओऽम् निर्गुण रूप अरूपा, नाम रूप ते न्यारा है।
ओऽम् सगुण स्वरूप होयके, बनिया जगत अकारा है।।
ओऽम् निर्गुण सगुण स्वरूपा, एक ब्रह्म अविनाशी है।
सत् चित् आनन्द अखण्ड अयोनी, नित्य स्वयं प्रकाशी है।।
जो जिस भाव से स्मरे जांको, तांको सोई पाता है।
इसमें कोई संशय नाहीं, सो तिस माहिं समाता है।।

दोहा:-

निर्गुण आतम देव का, सब घट है प्रकाश।
अजर अमर सत् रूप है, होत न तांका नाश।।63।।

छन्दः-

साक्षी चेतन आतम का तो, जन्म मरण नहिं होवत है।
ऊठत है नहिं बैठत है नहिं, जागत है नहिं सोवत है॥
सब के अन्तर सब के बाहिर, नभ ज्यों निर्मल न्यारा है।
पांच तत्त्व गुण तीनों से वह, निसंग सदा निर्धारा है॥
जिसको अग्नी जला न सकती, शस्त्र ताहिं न छेदत है।
पानी जांको डुबा न सकता, बाण न कोई बेधत है॥

दोहाः-

जलना कटना डूबना, धर्म देह का जान।
सत् चित् आनन्द आतमा, अमर अजूनी मान॥64॥

छन्दः-

जो जन जानत आतम मारत, आतम ही मर जाता है।
सो जन जग में जान अज्ञानी, सूख कभी नहिं पाता है॥
आतम किसको मारत नाहीं, आतम कभी न मरता है।
धर्म देह के हैं ये सारे, आतम कुछ ना धरता है॥
नचिकेता तुम निश्चय जानो, आतम सब से न्यारा है।
शरीर अन्तर रहने पर भी, लगत न ताहिं विकारा है॥

दोहाः-

आतम जिस विधि जानिये, सो सुन अब मन लाय।
जिसके श्रवण मनन से, जीव मुक्त हो जाय॥65॥

छन्दः-

सबके अन्तर सूक्ष्म आतम, छोटे से अति छोटा है।
सब के अन्तर बाहिर व्यापक, मोटे से अति मोटा है॥

सर्व कामना त्याग करे जो, विषयों से हट जाता है।
वही मुमुक्षू निर्मल बुद्धि से, उसका दर्शन पाता है॥
मानुष तन को पाकर जिसने, आतम दर्शन कीना है।
खाना-पीना लेना देना, तांका सफला जीना है॥

दोहाः-

अक्रिय आतम देव है, निरउपाधि सुख धाम।
अन्तःकरण उपाधि ते, करत सर्व सो काम॥66॥

छन्दः-

मन बुद्धि इन्द्रियों तन से मिलकर, करत सर्व व्यवहारा है।
हर्ष शोक युत दीसत भी पर, इन सब से सो न्यारा है॥
सब जीवों के शरीर अन्तर, आतम जो निर्बन्धन है।
सोई साक्षी आतम मैं हूँ, मेरी मुझको वन्दन है॥
ऐसी दृढ़ भावना जो जन, हृदय में नित धरता है।
सोई पूरण सुख को पाकर, हर्ष शोक से तरता है॥

दोहाः-

बहुत पढ़न से ताहिं को, पाय सके नहिं कोय।
केवल आतम स्मरने, आतम दर्शन होय॥67॥

छन्दः-

और किसी भी साधन से यह, आतम दृष्टि न आता है।
आतम की उत्कण्ठा से ही, जिज्ञासु तिहं पाता है॥
आतम से जो मिलना चाहत, आतम तां ढिग आता है।
माया का सो पटल हटाकर, अपना दरश दिखाता है॥

जो जन इन्द्रियों के बस होकर, चाह भोग की करता है।
सो जन चित्त की चञ्चलता कर, परम शान्ति को हरता है॥

दोहाः-

जिसके चित्त में चाहना, विषय भोग की नाहिं।
कह टेऊँ सो परम सुख, पावत इस तन माहिं॥68॥

छन्दः-

जो जन जग में भोग विषय की, इच्छा कब नहिं करता है।
मन इन्द्रियों को वश में राखत, पाप कर्म से डरता है॥
विवेक वर वैराग्य के बल से, जिसने मन को जीता है।
चारों साधन सम्पन्न होके, प्रेम प्याला पीता है॥
वही जिज्ञासू मोक्ष इच्छा कर, पास गुरू के आता है।
लेकर गुरु से आतम ज्ञाना, कृतार्थ हो जाता है॥

दोहाः-

जीव ईश दोनों सदा, रहते इस तन माहिं।
जीव कर्म फल भोगता, ईश भोगता नाहिं॥69॥

छन्दः-

जीव ईश दो गगन गुफ़ा में, गुप्त रूप से रहते हैं।
जा जा क्रिया उन दोनों की, भिन्न भिन्न कर सो कहते हैं॥
भोग रहित प्रकाश करत नित, ईश सो अन्तर्यामी है।
कर्मों के फल भोगन वाला, जीव सु रथ का स्वामी है॥
शरीर रथ है इन्द्रिय घोड़े, लगाम मन को जानो रे।
बुद्धि सारथी निज इच्छा से, ताहिं चलाता मानो रे॥

दोहाः-

भले बुरे मार्ग विषे, निश दिन ताहिं चलात।
जहं जहं उसकी प्रीति है, तहां तहां ले जात॥70॥

छन्दः-

चतुर सारथी शरीर रथ को, मुक्ती मग ले जाता है।
भोगनि रूपी मारग से वह, शीघ्र ताहिं हटाता है॥
मूंढ सारथी शरीर रथ को, भोग विषय ले जाता है।
पाप कर्म के मारग माहीं, नित ही ताहिं चलाता है॥
पाप कर्म को करके मूरख, घोर नरक में पड़ता है।
चौरासी के महा चक्कर में, फिर फिर जमता मरता है॥

दोहाः-

रथ वाही जब यान का, होवे परम सुजान।
कहे टेऊँ तब जीव यह, पावत पद निर्बान॥71॥

छन्दः-

विवेक वाला बुद्धी सारथी, जिस जिसको मिल जाता है।
जन्म मरण को मेटे सो जन, अविनाशी घर आता है॥
शरीर से ये इन्द्रिय सूक्ष्म, तांसे मन को मानो रे।
मन से बुद्धि को सूक्ष्म जानो, बुद्धि से महतत्त जानो रे॥
महतत्त से प्रकृती सूक्ष्म, तांसे आतम ज्योती है।
आदि पुरुष उस चेतन माहीं, सृष्टि समाप्त होती है॥

दोहाः-

आतम पुनि परमात्मा, दोनों एक स्वरूप।
कह टेऊँ यों कहत है, वेद मुनीवर भूप॥72॥

छन्दः-

पारब्रह्म है सर्व समाया, मूंढों को नहिं भासत है।
मनुष्य विवेकी तांको देखत, घट घट जो प्रकाशत है॥
मन बुद्धि चित्त से मिल कर सोई, करत सर्व व्यवहारा है।
भ्रांती से यह कर्ता भासत, परन्तु सबसे न्यारा है॥
अविद्या केरी निद्रा माहीं, जीव आदि से सोया है।
आतम दर्शन के बिन इसने, बहुत जन्म ही खोया है॥

दोहाः-

सोय रहा है जीव नित, मोह निशा के माहिं।
कहे टेऊँ पुकार के, सन्त जगावत ताहिं॥73॥

छन्दः-

सन्तन की सुन अमृत वाणी, को जन जग में जागत है।
सद्गुरु से ले सत् उपदेशा, आतम में अनुरागत है॥
अन्तर आतम दर्शन करके, पूरण पद को पाता है।
चौरासी लख जोनि चक्कर में, सो जन कभी न जाता है॥
साक्षी बनकर सर्व जगत का, देखत अजब निज़ारा है।
जीवन मुक्ती होकर विचरत, पावत अनन्द अपारा है॥

दोहाः-

सन्तन का उपदेश सुनि, जो जन जागत नाहिं।
कह टेऊँ सो जीव नित, भटकत भोगन माहिं॥74॥

छन्दः-

पाञ्चों इन्द्रिय पाञ्च विषय में, राग सहित जो राखत है।
आतम दर्शन सो नहिं पावत, वेद मुनीवर भाखत है॥
जन्म मरण के दुःख द्वन्द में, बार-बार ही आता है।
मूंढ पुरुष वो मन्द बुद्धी कर, मुक्ती पद ना पाता है॥
भोग वासना करके मूरख, कर्म सकामी करता है।
कर्मों का फल भोगि भोगि के, घोर नरक में पड़ता है॥

दोहाः-

प्रत्यक्ष आतम तत्त्व को, लखत न मूंढ अजान।
कह टेऊँ तिस को सदा, जानत सन्त सुजान॥75॥

छन्दः-

इस आतम ने स्वयं सत्ता से, जीव चराचर धारा है।
इन्द्रिय द्वारा पाञ्च विषय का, अनुभव करने हारा है॥
आतम ही आधार जगत का, रहता सब के माहीं है।
ऐसा कोई नाहिं पदार्थ, जिसमें आतम नाहीं है॥
विष्णू का वो परम धाम है, कोई न इससे आगे हैं।
ऐसी बुद्धि को जिसने पाया, भाग तिसी के जागे हैं॥

दोहाः-

जिस आतम का तात तुम, प्रश्न कीना जोय।
देवों को भी ताहिं में, प्रबल संशय होय॥76॥

छन्दः-

सूक्ष्म आतम सब के अन्तर, करत सदा उजियारा है।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति का नित, सोई जानन हारा है॥

जो जो देखत नयनों से तुम, सब को वह प्रकाशत है।
सन्त वेद यों मुनिवर कहते, आतम से सब भासत है ॥
ज्ञानवान इस आतम को नित, रूप आपना जानत है।
आतम अरु परमातम माहीं, रञ्चक भेद न मानत है॥

दोहाः-

जो जन इस विधि जानते, साक्षी ब्रह्म अभेद।
कहे टेऊँ तिस पुरुष का, छूट जात जग खेद॥77॥

छन्दः-

जो जन निश्चय ऐसा जानत, आतम सब का स्वामी है।
पाञ्च तत्त्व और तीन गुणों में, स्थित अन्तर्यामी है॥
कर्मों का फल भोगन वाला, अन्तःकरण अभासा है।
आना जाना इसमें जानो, आतम सम आकाशा है॥
जिस आतम को तुमहीं पूछत, सोई मैं बतलाया है।
इस पर अब विश्वास करो तुम, वेदन यह फरमाया है॥

दोहाः-

जिस आतम प्रकाश ते, प्रकाशत रवि चन्द।
ऐसे आतम देव को, करता हूँ मैं वन्द॥78॥

छन्दः-

ब्रह्मा विष्णू शंकर आदी, जेते सुर कहलाते हैं।
वे सब आतम को ही पूजत, आतम के गुन गाते हैं॥
आतम का सब ध्यान धरत हैं, आतम को नित सेवत हैं।
आतम को नित वन्दन करके, मन वाञ्छित फल लेवत हैं॥

सब देवन का मूल आतमा, तीन भवन आधारा है।
देवन का भी परम देव सो, आतम देव अपारा है॥

दोहाः-

रहता अपने आप में, स्थित आतम देव।
ऐसे आतम देव का, मूण्ढ न जानत भेव॥79॥

छन्दः-

ऐसे आतम को अज्ञानी, अपना रूप न जानत है।
मैं सु और हूँ ब्रह्म और है, ऐसे मन में मानत है॥
भिन्न भिन्न करके मानत सब में, भेद भाव मन धरते हैं।
भेद भाव से राग द्वेष कर, पाप पुण्य को करते हैं॥
आतम में सब क्रिया लख के, सुखी दुःखी नित होते हैं।
मूण्ढ मती वे तन अभिमानी, जन्म जन्म में रोते हैं॥

दोहाः-

पूरण सद्गुरु देव बिन, होत न आतम ज्ञान।
ज्ञान बिना मिटता नहीं, भेद भरम अज्ञान॥80॥

छन्दः-

गुरु कृपा से संसा नाशत, भेद भ्रम मिट जाता है।
पूरण सब में व्यापक इक ही, आतम दृष्टी आता है॥
गुरु कृपा ते शान्ती पावत, दूःख द्वन्द सब नाशत है।
हृदय अन्तर चेतन ज्योती, रैन दिवस प्रकाशत है॥
गुरु कृपा ते पार ब्रह्म को, रूप आपना जानत है।
जन्म मरण आदी षट् उर्मी, अपने में नहिं मानत है॥

दोहाः-

सद्गुरु अनुभव ग्रन्थ जब, तीनों ही मिल जात।
तब ही आतम देव का, शीघ्र दर्शन पात ॥81॥

छन्दः-

आतम का जब दर्शन होता, तब ही ऐसा देखत है।
पार ब्रह्म मैं एक रूप हूं, रञ्चक भेद न पेखत है॥
मैं हूँ सत् चित् आनन्द साक्षी, मेरा सब घट वासा है।
रवि शशि तारे सब ज्योतिन में, मेरा ही प्रकासा है॥
जाग्रत आदी तीन काल का, मैं ही अन्तर्यामी हूँ।
माया आदी कोटि भवन का, मैं ही एक स्वामी हूँ॥

दोहाः-

तीन काल में एक रस, घटता बढ़ता नाहिं।
ऐसा निर्मल आतमा, रहता सब घट माहिं ॥82॥

छन्दः-

जैसे ऊंचे पर्वत ऊपर, पानी आके बरसत है।
इधर उधर को चला जात है, पर्वत को ना परसत है॥
आतम अक्रिय अचल अलेपा, निर्मल इकरस रहते हैं।
शब्द आदि रस पाञ्चों तामें कहने मात्र कहते हैं॥
ज्ञानवान जो आतम दर्शी, मनन शील कहलाते हैं।
आतम सर्व उपाधि अतीता, ऐसे ही बतलाते हैं॥

दोहाः-

तुझ ही को नचिकेत जो, कहा यथार्थ ज्ञान।
भेद भाव को छोड़ के, दीजे इस पर ध्यान ॥83॥

छन्दः-

भेद भाव को दूर करे तुम, अभेद को उर माहिं धरो।
जीव ब्रह्म में भेद न कोई, निश्चय यह मन माहिं करो॥
वेद शास्त्र यह वचन अभेदी, बारंबार उच्चारत हैं ।
सनक जनक भी अभेद वाणी, मैं हूँ ब्रह्म पुकारत हैं ॥
वचन अभेदी मात पिता से, सहस गुणा हितकारी है।
वचन अभेदी जो नहिं मानत, सो नर मूढ़ अनारी है॥
जन्म मरण से रहित आतमा, जिस में को न विकारा है।
स्वयं प्रकाशी इक अविनाशी, सब घट खेलन हारा है॥

दोहाः-

देह नगर में आतमा, करता है नित राज।
नृप नियाई बैठके, सर्व संवारत काज ॥84॥

छन्दः-

देह नगर के स्वामी का जो, ध्यान हृदय में धरता है।
तिसी पुरुष को सब सुख देके, सर्व शोक को हरता है॥
मलिन वासना मन की मेटे, कर्म जाल को तोड़त है।
सर्व उपाधी हरके तांको, अपने अन्तर जोड़त है॥
येही आतम अकाश माहीं, सूर्य हो प्रकाशत है।
ये ही आतम रैन प्रकाशी, चन्दा होकर भासत है॥

दोहाः-

कहां धरणि कहं उदक हो, कहां अग्नि प्रकाश।
कहां पवन यह आतमा, कहां बन्यो आकाश ॥85॥

छन्दः-

कहाँ नगर कहं बाग बना यह, कहाँ फूल हो फूला है।
कहाँ बन्यो यह सूक्ष्म आतम, कहाँ बन्यो स्थूला है।।
कहं यह ठाकुर कहं पूजारी, कहं तीर्थ कहं नावत है।
कहाँ सुमेरू कहाँ हिमाचल, कहं बादल बन आवत है।।
आपहिं आतम जगत बना है, आपहिं देखनहारा है।
और अधिक मैं कहं तक भाखूं, यह सब ब्रह्म पसारा है।।

दोहाः-

देह देश में रहत है, निश दिन आतम राम।
अपनी इच्छा से सदा, करता है सब काम।।86।।

छन्दः-

प्राण पवन को ऊपर लेकर, अपान नीचे छोड़त है।
पाञ्चों इन्द्रिय पाञ्च विषय में, अपने बल से जोड़त है।।
जैसे राजा निज मन्त्रियों को, कार्य माहिं लगाता है।
तैसे आतम सब देवों को, आज्ञा माहिं चलाता है।।
जैसे नगरी स्वामी के बिन, शोभा नहिं कछु पाती है।
तैसे देही आतम के बिन, रञ्चक नाहिं सुहाती है।।

दोहाः-

तब तक देही शोभती, जब तक आतम वास।
कह टेऊँ आतम बिना, देही होवत नास।।87।।

छन्दः-

जीव देह को छोड़ चलत जब, तब तन यह गिर जाता है।
इन्द्रिय आदिक पाञ्च प्राणा, कोई नज़र न आता है।।
अविद्या से इस तन का जो जन, करत मलिन अभिमाना है।
सो जन वार वार ही जग में, पावत जूनी नाना है।।
यह तन पाकर जो जन जगमें, नीच कर्म को करता है।
मरने पीछे वो नर पापी, जड़ जूनी बहु धरता है ।।

दोहाः-

जो जन मानुष देह में, जैसा कर्म कमात।
कर्मों के अनुसार सो, उसी जन्म को पात।।88।।

छन्दः-

उत्तम पुरुष है जग में सो जो, मलिन वासना हरता है।
सन्त वेद की आज्ञा को वह, कभी न उल्लंघन करता है।।
जैसे सन्त ग्रन्थ सब कहते, तैसे कर्म कमाता है।
आतम का सो दर्शन करके, मन इच्छित फल पाता है।।
जीव ब्रह्म से जुदा नहीं है, आतम ब्रह्म स्वरूपा है।
अन्तर बाहिर ब्रह्म व्यापक, सतचित आनन्द रूपा है।।

दोहाः-

एक सर्व में रम रहा, ब्रह्म सदा सुख रूप।
जो जानत तिस ब्रह्म को, सो सुख पाय अनूप।।89।।

छन्दः-

आतम ज्ञानी इसी ब्रह्म को, दूर न कबहूँ देखत है।
हृदय भीतर अन्तर्मुख हो, आतम दर्शन पेखत है।।

सोई आतम ज्ञानी निश दिन, ब्रह्मानन्द में झूलत है ।
अपने ब्रह्मातम का दर्शन, देखि देखि के फूलत है ।।
आतम सुख से बेमुख जो नर, शान्ति न कब सो पाता है।
विषय भोग में लम्पट हो कर, दर दर भटका खाता है।।

दोहाः-

जिसको आतम ज्ञान नहिं, सो नर मूण्ढ अजान।
कह टेऊँ वो जगत में, जानो पशू समान।।90।।

छन्दः-

जैसे मृगा निश दिन बन में, खान पान कर सोवत है।
तैसे मानुष मूण्ढ जगत में, जन्म अमोलक खोवत है।।
मनुष जन्म का जग में जानो, कर्म यही प्रधाना जी।
पूरण गुरु की शरणी जाकर, लेना आतम ज्ञाना जी ।।
ब्रह्म ज्ञान से त्याग वासना, आतम का सुख पाना जी।
निर्भय सुख में निशदिन रहकर, जीवन सफल बनाना जी।।

दोहाः-

ऐसा सुन नचिकेत तब, कहा जोड़ कर दोय।
मुझ को आतम सूख का, कैसे अनुभव होय।।91।।

छन्दः-

आतम सुख वह कौन वस्तु है, जिसको तुमने गाया है।
कैसे मैं इस सुख को पाऊं, सन्तनि जिसको पाया है।।
ऐसा सुन कर धर्मराज ने, नचिकेता को उत्तर दिया।
सो सुख आतम अखंड अनादी, वेदों ने वख्यान किया।।

सो सुख है स्वरूप तुम्हारा, दूर न खोजन जाओ जी।
अन्तर्मुख अभ्यास करे तुम, आतम का सुख पाओ जी।।

दोहाः-

आतम सुख से है बना, सारा यह संसार।
श्रवन दे नचिकेत सुन, ताहिं करो विस्तार ।।92।।
यह जग उलटा वृक्ष है, जांका ऊपर मूल।
नीचे तांकी डालियां, फूले बहु फल फूल।।93।।

छन्दः-

मूल जगत का पारब्रह्म है, लोक डालियां मानो जी।
वेद पुराणा पत्ते जिसी के, फूल कर्म शुभ जानो जी।।
ज्यों नचिकेता कदली तरु के, सार नहीं कछु अन्दर है।
तैसे यह संसार असारा, देखन में बहु सुन्दर है।।
ऐसा ब्रह्म अनादी जिसने, जान लिया वह ज्ञानी है।
वो ही पण्डित सन्त सुजाना, वो ही योगी ध्यानी है।।

दोहाः-

पारब्रह्म इस जगत का, आदी है आधार।
जांकी आज्ञा में चलत, सुर नर सब संसार।।94।।

छन्दः-

ब्रह्मा आदी देव उसी की, आज्ञा पाय विचरते हैं।
निशदिन तांके भय में रहकर, सर्व काज को करते हैं।।
जो जन इस ही पारब्रह्म को, मानुष तन में पाता है।
सोई ज्ञानी मुक्ती पा कर, फेर गर्भ नहिं आता है।।

इस ही कारण मनुष देह में, ब्रह्म ज्ञान को पाना जी।
मोक्ष द्वारा मानुष तन है, फेर नहीं यह आना जी॥

दोहाः-

मानुष तन को पाय जो, गहे न आतम ज्ञान।
नचिकेता तिस जीव का, जीवन वृथा जान॥95॥

छन्दः-

चौरासी लख जूनियों माहीं, मानुष तन प्रधाना है।
मोक्ष हेतु यह जन्म मिला है, कहते वेद पुराना है॥
आतम दर्शन और जन्म में, कभी न किस को होवत है।
चौरासी लख जूणिनि अन्दर, ज्ञान हीन नर रोवत है॥
तांते अबहीं यत्न करो तुम, समय सोने का नाहीं रे।
निज आतम का दर्शन कर लो, दूर नहीं तुझ माहीं रे॥

दोहाः-

जैसे दर्पण विमल में, अपना मुख दर्शात।
तैसे निर्मल मन विषे, आतम दृष्टी आत॥96॥

छन्दः-

सूक्ष्म ते अति सूक्ष्म है यह, और न कोय दिखाता है।
निर्मल अन्तःकरण द्वारा, आतम दर्शन पाता है॥
जैसे पीड़ा पेट अन्दर की, और न को पहचानत है।
तैसे उर में आतम को ही, निज अनुभव से जानत है॥
रूप रंग बिन है यह आतम, नैन ताहिं ना पेखत है।
सूक्ष्म बुद्धि से उस आतम को, आतम दर्शी देखत है॥

दोहाः-

इस विधि ही जिसने किया, आतम का दीदार।
सो जन पावत उर विषे, आतम सूख अपार॥97॥

छन्दः-

जो जन उसको जानत है सो, अविद्या से छुट जाता है।
जीवन मुक्ती जग में होकर, अन्त अमर पद पाता है॥
मन बुद्धि आदिक पांच इंद्रिय जहं, अन्तर्मुख हो जाती हैं।
वृत्ती भी व्यवहार तजे सब, आतम माहिं समाती हैं॥
तीन अवस्था जहां न भासत, ना कछु फुरने रहते हैं।
वही अवस्था आतम पद की, आतम ज्ञानी कहते हैं॥

दोहाः-

जहां न मन इन्द्रिय रहे, रहे न बुद्धि वीचार।
योगी ज्ञानी कहत तिहं, आतम पद निर्धार॥98॥

छन्दः-

ज्ञान योग ये दोनों मार्ग, अमर देश पहुँचाते हैं।
जो मार्ग जिहं सुगम लगत है, सो तिहं मार्ग जाते हैं॥
वेद द्वारा महा मुनीवर, दोनों ही बतलाते हैं।
जिसको सुनके मनुष्य मुमुक्षू, परमार्थ को पाते हैं॥
जब हीं इसकी चिद् जड़ ग्रन्थी, ब्रह्म ज्ञान से टूटत है।
तबहीं प्राणी ब्रह्म रूप हो, मोह चक्कर से छूटत है॥

दोहा:-

सर्व कामना को तजे, रहता जो निष्काम।
निश्चय कर सो पावता, अमरापुर का धाम॥99॥

छन्द:-

अंगुष्ठ मात्र आतम सब के, हृदय अन्तर रहते हैं।
नचिकेता यह निश्चय करिये, चतुर वेद यों कहते हैं॥
शरीर से यह आतम न्यारा, जो नित स्वयं प्रकाशी है।
सो है तेरा रूप सनातन, अजर अमर अविनाशी है॥
भिन्न भिन्न करके हे नचिकेता, तुमको मैं समझाया है।
सर्व ग्रन्थ का सार यही है, जो मैं तुझे सुनाया है॥

दोहा:-

मृत्यु लोक को लौट के, जाय करो विश्राम।
नचिकेता पूरण भए, तेरे सबही काम॥100॥

छन्द:-

धर्मराज का सुन उपदेशा, नचिकेता हर्षाया जी।
ब्रह्म विद्या पुनि योग विद्या को, पूरण विधि से पाया जी॥
नाना विधि गुरु पूजन करके, चरणे सीस निवाया जी।
धर्मराज की आज्ञा पाकर, नचिकेता घर आया जी॥
आकर अपने मात पिता को, प्रेम सहित प्रणाम किया।
समाचार जो यम लोक का, पितु को सब बतलाय दिया॥

दोहा:-

उद्दालक को सुनत ही, मन में उपजा मोद।
प्रेम सहित नचिकेत को, बैठाया निज गोद॥101॥

छन्द:-

उद्दालक फिर कहन लगा तुम, अपना जन्म सुधारा है।
मेरे मोह ममत को त्यागे, तुमने कुल को तारा है॥
नचिकेता ने कहा पिताजी, यह तव कृपा होई है।
जिस पद को सब मुनिवर चाहत, मैंने पाया सोई है॥
प्रलय में भी डोलत ना जो, वेद जिसी को गाता है।
ऐसे पूरण आतम पद में, मेरा मन अब राता है॥

दोहा:-

ऐसे कह नचिकेत जब, करी पिता को वन्द।
कह टेऊँ तबहीं भया, सब के मन आनन्द॥102॥

छन्द:-

फेरि वासना सर्व त्यागे, कार्य जग के करत रहे।
कमल फूल ज्यों रह निर्लेपा, शोक मोह को हरत रहे॥
प्रारब्ध कर अपना जीवन, सहिज स्वभाव बिताया जी।
प्रारब्ध जब क्षीण भई तब, पद निर्वाण समाया जी॥
जो कोई इस ज्ञान कथा को, सुनकर ध्यान लगावेगा।
नचिकेता के सदृश जग में, मुक्ती पद सो पावेगा॥

दोहा:-

कथा महातम का अभी, श्रवण करो सुजान।
जांके श्रवण मनन से, होवे आतम ज्ञान ।।103।।

छन्द:-

इसी कथा को श्रवण करके, जो जन मन वीचारेगा।
कह टेऊँ सो काट चौरासी, फेरि जन्म नहिं धारेगा ।।
और भावना जैसी राखे, तैसा वह फल पावेगा।
पुत्र गऊ धन आदि स्वर्ग सुख, पाय सुखी हो जावेगा।।

दोहा:-

मम बुद्धि कछु प्रवीन नहिं, नहिं विद्या अभ्यास।
पिङ्गल को पढ़िया नहीं, होया प्रेम हुलास।।104।।

छन्द्:-

सद्गुरु के इक चरण-कमल की, केवल मैंने ओट गही।
कह टेऊँ जिस कृपा से यह, कथा समाप्त होय रही।।
धर्मराज नचिकेत कथा यह, सुन्दर सरल बनाई मैं।
हरिद्वार में गंग किनारे, बैठ प्रेम से गाई मैं।।

दोहा:-

ब्रह्म नाथ खण्ड कमल जो, सम्वत जान सुजान।
ज्येष्ठ मास एकादशी, कृष्ण पक्ष पहचान।।105।।
कथा समाप्त हो रही, शुक्रवार के वार।
कह टेऊँ जोई सुने, पावे मोक्ष द्वार।।106 ।।

(इति शुभम्)

ॐ शान्ति ! शान्ति ! शान्ति !!!